श्रीमद् आचार्य नेमिचन्द्र
सिद्धान्तचक्रवर्ती
विरचित

लब्धिसार

चारित्र मोह क्षपणा अधिकार

Presentation Developed By: Smt Sarika Vikas Chhabra

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे, आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ॥1॥

- अन्वयार्थ: मैं (नेमिचन्द्राचार्य) (सिद्धे) सिद्धों को (जिणिंदचंदे) जिनेन्द्रचंद्र अर्थात् अरिहन्तों को (आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे) आचार्य, उपाध्याय व साधुओं को (वंदिय) नमस्कार करके
- (सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं) सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र लब्धि का (परूवेमो) वर्णन करता हूँ ॥1॥

तिकरणमुभयोसरणं, कमकरणं खवणदेसमंतरयं ।
संकम अपुव्वफड्डयकिट्टीकरणाणुभवण खवणाये ॥393॥

- अन्वयार्थ: (खवणाये) चारित्रमोह की क्षपणा के विषय में (तिकरणं) अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण – ये तीन करण, (उभयोसरणं) बंधापसरण और सत्त्वापसरण – ये दो अपसरण, (कमकरणं) क्रमकरण, (खवणदेसमंतरयं) क्षपणा, देशघातिकरण, अंतरकरण (संकम अपुव्वफड्डयकिट्टीकरणा-णुभवण) संक्रमण, अपूर्वस्पर्धककरण, कृष्टिकरण, कृष्टिअनुभवन – ये 13 अधिकार हैं ॥393॥

www.JainKosh.org

चारित्र मोह की क्षपणा में 13 अधिकार हैं –

1. अध:प्रवृत्तकरण
2. अपूर्वकरण
3. अनिवृत्तिकरण
4. बंधापसरण
5. सत्त्वापसरण
6. क्रमकरण
7. क्षपणा
8. देशघातिकरण
9. अंतरकरण
10. संक्रमण
11. अपूर्वस्पर्धककरण
12. कृष्टिकरण
13. कृष्टि अनुभवन

चारित्र मोह की क्षपणा किसके ?

1) दर्शन मोह का क्षय होने के पश्चात् ही चारित्र मोह की क्षपणा हो सकती है । याने क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही क्षपक श्रेणी पर आरोहण करता है ।

2) ऐसा क्षायिक सम्यग्दृष्टि दीक्षा ग्रहणकर कर अप्रमत्त-प्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त करता है ।

3) सकलसंयम प्राप्ति के पश्चात् वह महामुनि चक्रवर्ती; यथाख्यात चारित्र रूप एकछत्र राज्य प्राप्त करने हेतु क्षपक श्रेणीरूप दिग्विजय करने के सम्मुख होता हुआ सातिशय अप्रमत्त अवस्था को प्राप्त करता है ।

गुणसेढी गुणसंकम, ठिदिरसखंडाण णत्थि पढमम्हि ।
पडिसमयमणंतगुणं, विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु ॥394॥

- अन्वयार्थ: (पढमम्हि) प्रथम अध:प्रवृत्तकरण में (गुणसेढी) गुणश्रेणी (गुणसंकमठिदिरसखंडाण) गुणसंक्रमण, स्थितिकांडक-घात और अनुभागकांडकघात (णत्थि) नहीं होते हैं
- परन्तु वह जीव (हु) निश्चय से (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (अणंतगुणं) अनन्तगुणी (विसोहिवड्ढीहिं) विशुद्धि की वृद्धि से (वड्ढदि) बढ़ता है ॥394॥

तीन करण

अधःप्रवृत्तकरण	जहाँ भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम समान भी हो सकते हैं और भिन्न भी हो सकते हैं ।
अपूर्वकरण	जहाँ भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम भिन्न ही होते हैं ।
अनिवृत्तिकरण	जहाँ समान समयवर्ती जीवों के परिणाम समान ही होते हैं ।

अध:प्रवृत्तकरण

सर्वप्रथम क्षपक; सातिशय अप्रमत्त अवस्था को प्राप्त करता है । यह ही अध:प्रवृत्तकरण कहलाता है । अध:प्रवृत्तकरण का लक्षण, काल आदि जैसा उपशमश्रेणी आदि में कह आये हैं, वैसा ही जानना ।

इतनी विशेषता है कि क्षपक अध:प्रवृत्तकरण आदि का काल उपशामक अध:प्रवृत्तकरण आदि के काल से संख्यात गुणा हीन होता है ।

7वां गुणस्थान

स्वस्थान अप्रमत्तविरत

जिसमें जीव 6 – 7 वे गुणस्थान में गमनागमन करता है

सातिशय अप्रमत्तविरत

जिसमें जीव श्रेणी आरोहण करता है

स्वस्थान और सातिशय अप्रमत्त

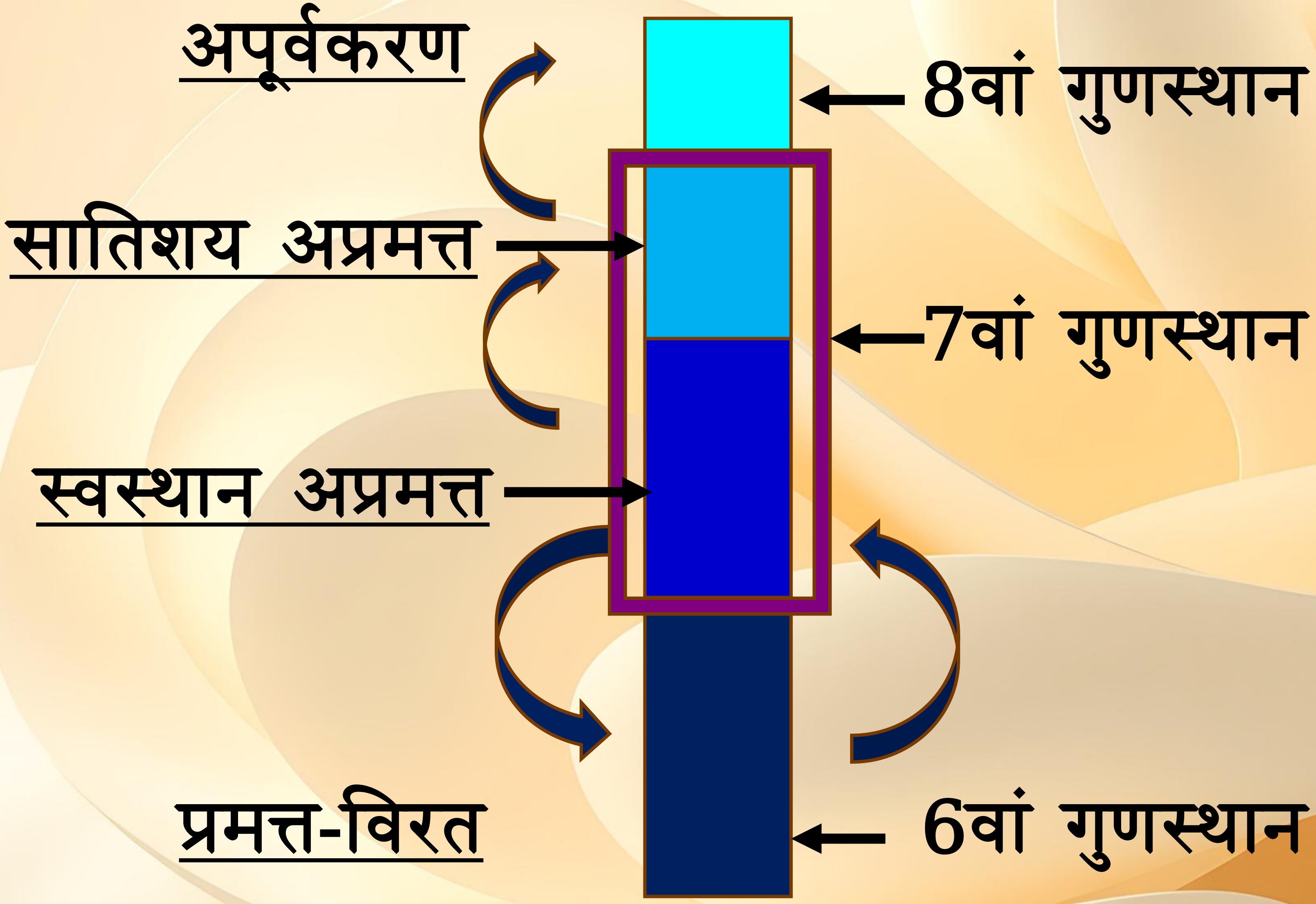

अध:प्रवृत्तकरण में नहीं होने वाले कार्य

- गुणश्रेणी निर्जरा
- गुणसंक्रमण
- स्थितिकांडकघात
- अनुभाग कांडकघात

परंतु प्रत्येक समय में अनंत गुणी विशुद्धि की वृद्धि से बढ़ता है ।

Kosh.org

अध:प्रवृत्त करण के 4 आवश्यक

प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि बढ़ना

पुण्य प्रकृतियों का बढ़ता हुआ अनुभाग बंध

पाप प्रकृतियों का अनुभाग-बंधापसरण

स्थितिबंधापसरण

इन चारों आवश्यकों में से

जीव में होने वाला एकमात्र आवश्यक

प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि

शेष 3 आवश्यक

जीव के परिणामों के निमित्त से

नवीन बंधने वाले कर्मों में होते हैं।

सत्थाणमसत्थाणं, चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु ।
पडिसमयमणंतेण य, गुणभजियकमं तु रसबंधे ॥395॥

- अन्वयार्थ: (हु) पुनः वह जीव (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (रसबंधे) अनुभागबंध में
- (सत्थाणं) प्रशस्त प्रकृतियों का (अणंतेण गुणकमं) अनन्तगुणित क्रम से (चउविट्ठाणं रसं) चतुःस्थानीय अनुभाग (बंधदि) बाँधता है (च) और
- (असत्थाणं) अप्रशस्त प्रकृतियों का (अणंतेण य भजियकमं) अनन्तवें भाग क्रम से (विट्ठाणं रसं) द्विस्थानीय अनुभाग (बंधदि) बाँधता है ॥395॥

www.JainKosh.org

2nd आवश्यक

अनुभाग बंध बढ़ना

प्रतिसमय

प्रशस्त प्रकृतियों का

अनंत गुणा-अनंत गुणा

चतु:स्थानीय अनुभागबंध होता है ।

www.JainKosh.org

3rd आवश्यक

अनुभाग बंधापसरण

प्रतिसमय

अप्रशस्त प्रकृतियों का

अनंत गुणाहीन-अनंत गुणाहीन

द्विस्थानीय अनुभागबंध होता है ।

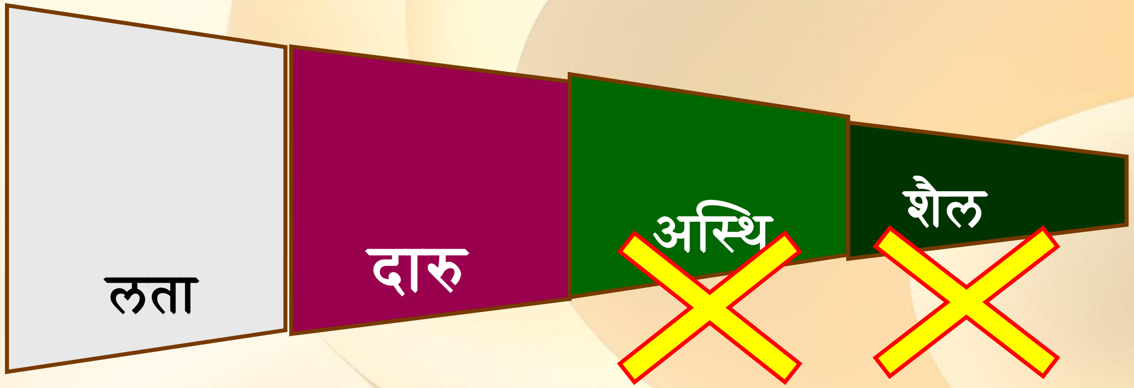

घातिया प्रकृति

अघातिया प्रकृति

पाप प्रकृतियों का नया अनुभाग बंध

घाति कर्म ➔

अघाति कर्म ➔

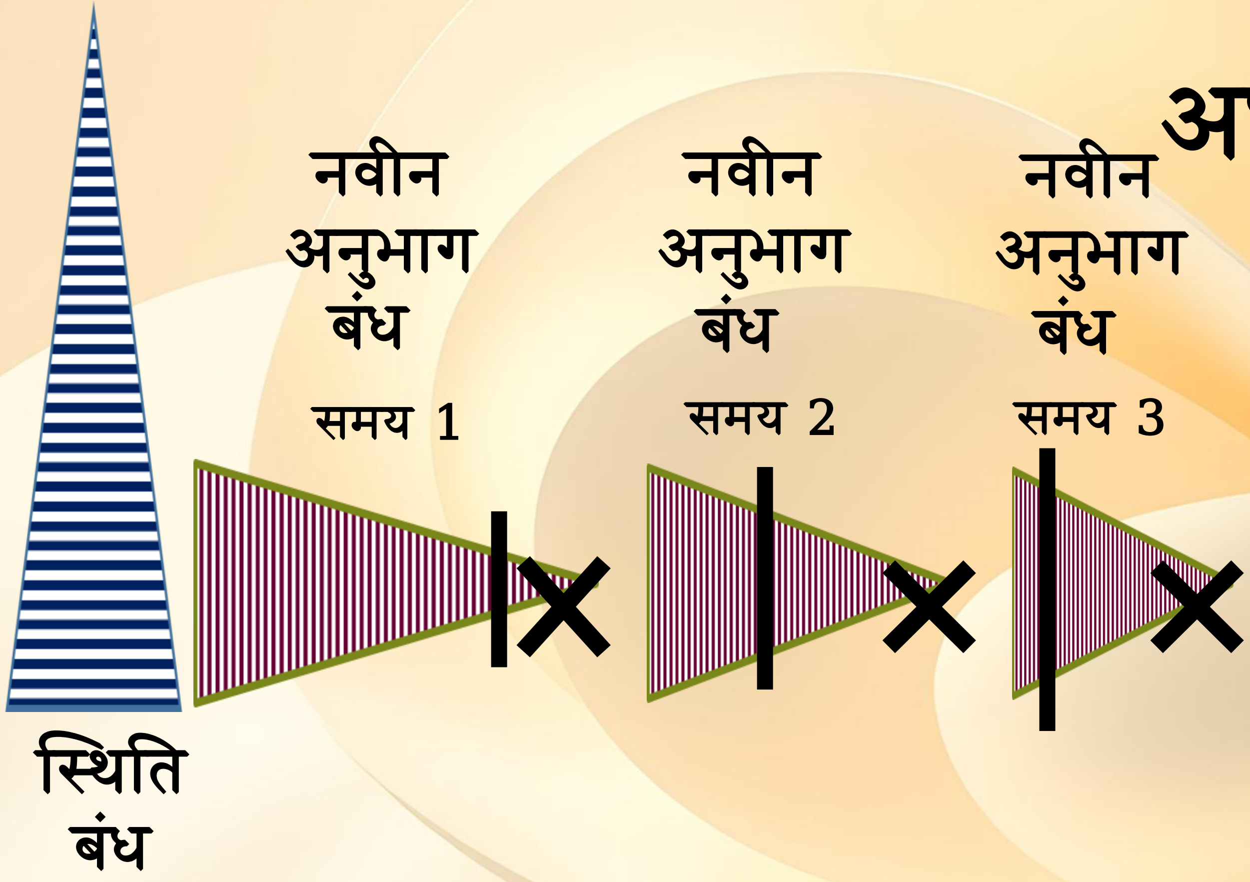

इन द्वि-स्थानीय अनुभागों में भी प्रतिसमय अनंत गुणा हीन-हीन होकर अनुभाग बांधता है।

प्रश्न - प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग-बंध भी घट-घटकर क्यों नहीं होता ?

उत्तर - प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग-बंध विशुद्ध परिणामों से अधिक होता है, संक्लेश भावों से कम होता है – ऐसा नियम है ।

यहाँ विशुद्धि बढ़ रही है ।

अत: प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग-बंध बढ़ता ही है, घटता नहीं है ।

पल्लस्स संखभागं, मुहुत्तअंतेण ओसरदि बंधे ।
संखेज्जसहस्साणि य, अधापवत्तम्मि ओसरणा ॥396॥

- अन्वयार्थ :- (बंधे) स्थिति-बंध में (मुहुत्तअंतेण) एक-एक अंतर्मुहूर्त के द्वारा (पल्लस्स संखभागं) पल्य का संख्यातवाँ भाग (ओसरदि) कम करता है ।
- इस प्रकार (अधापवत्तम्मि) अध:प्रवृत्तकरण में (संखेज्जसहस्साणि) संख्यात हजार (ओसरणा) स्थितिबंधापसरण होते हैं ॥396॥

www.JainKosh.org

4th आवश्यक

स्थिति बंधापसरण

बंधने वाले समस्त कर्मों की स्थिति

प्रत्येक अंतर्मुहूर्त में

पल्य का संख्यात भाग प्रमाण

घट-घटकर बंधती है,

उसे स्थितिबंधापसरण कहते हैं।

एक अंतर्मुहूर्त में 1 स्थितिबंधापसरण होता है, तो अधःप्रवृत्तकरण के अंतर्मुहूर्त में कितने बंधापसरण होंगे ?

$$\frac{1}{\text{बंधापसरण का अंतर्मुहूर्त}} \times \text{अधःप्रवृत्तकरण का अंतर्मुहूर्त}$$

$$\frac{1}{\text{2२}} \times \text{2२२} = \text{२}$$

अधःप्रवृत्तकरण में संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण हो जाते हैं ।

दृष्टान्त

मानाकि 1 बंधापसरण 40 समय में होता है और

अध:प्रवृत्तकरण का काल = 400 समय है।

तो कुल कितने बंधापसरण होंगे ?

$$\frac{1}{40} \times 400 = 10$$

ऐसे ही वास्तविक गणित में हजारों स्थितिबंधापसरण अध:प्रवृत्तकरण में होते हैं ।

समस्त कर्मों का स्थिति-बंध क्यों घटता है? सिर्फ पाप प्रकृतियों का क्यों नहीं?

क्योंकि 3 आयु को छोड़कर शेष सभी कर्मों की स्थिति पाप-रूप ही है।

आदिमकरणद्धाए, पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि ।
संखेज्जगुणविहीणो, ठिदिबंधो होदि णियमेण ॥397॥

- अन्वयार्थ: (आदिमकरणद्धाए) प्रथम करण अर्थात् अधःप्रवृत्तकरण के काल में (पढमट्ठिदिबंधदो दु) प्रथम स्थिति-बंध से (चरिमम्हि) अंतिम समय का (ठिदिबंधो) स्थिति-बंध (णियमेण) नियम से (संखेज्जगुणविहीणो) संख्यातगुणा हीन होता है ॥397॥

अधःप्रवृत्तकरण के आदि, अंत में स्थिति-बंध

	प्रारंभ में बंध	अंतिम बंध	विशेष
स्थिति-बंध	अंत:कोड़ाकोड़ी सागर	$\frac{\text{अंत:कोड़ाकोड़ी सागर}}{\text{संख्यात}}$	प्रारंभ के स्थिति-बंध से अंत में संख्यात गुणा हीन स्थिति-बंध हो रहा है ।
संदृष्टि	सा अं को 2	$\frac{\text{सा अं को 2}}{४}$	४ की संदृष्टि संख्यात के लिए है ।

संकामणपट्ठवगस्स परिणामो केरिसो भवे ।
जोगे कसाय-उवजोगो लेस्सा वेदो य को भवे ॥1॥

- अन्वयार्थ: (संकामणपट्ठवगस्स) संक्रामण प्रस्थापक के अर्थात् कषायों की क्षपणा का प्रारंभ करने वाले जीव का (परिणामो) परिणाम (केरिसो) किस प्रकार का (भवे) होता है? (जोगे) योग, (कसाय-उवजोगो) कषाय, उपयोग, (लेस्सा य) लेश्या और (वेदो) वेद (को भवे) कौन-सा होता है?

क्षपक की अवस्था

परिणाम

- अति-विशुद्ध

योग

- 4 मनोयोग, 4 वचनयोग, औदारिक काययोग में ये एक

कषाय

- हीयमान संज्वलन-चतुष्क में से एक

उपयोग

- 1) श्रुतज्ञानोपयोग अथवा
- 2) मति-श्रुत ज्ञानोपयोग में से एक
- 3) चक्षु-अचक्षुदर्शनोपयोग, मति-श्रुतज्ञानोपयोग में से एक

लेश्या

- शुक्ल

वेद

- भाववेद – तीनों वेदों में से कोई एक
- द्रव्यवेद – पुरुषवेद

www.JainKosh.org

काणि वा पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबंधदि ।
कदि आवलियं पविसंति, कदिण्हं वा पवेसगो ॥2॥

- अन्वयार्थ: पूर्वबद्ध कर्म कौन-कौन से हैं ?
- कौन-से कर्म परमाणुओं को बाँधता है ?
- उदयावली में कितनी कर्म प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं ?
- कौन-से कर्मों का प्रवेशक (उदीरक) होता है ?

www.JainKosh.org

क्षपक के सत्त्व

प्रकृति सत्कर्म

- 148 – 3 दर्शनमोह – 4 अनंतानुबंधी – 3 आयु = 138 अधिकतम हो सकती हैं ।
- आहारक-4 और तीर्थंकर प्रकृति भजनीय है । अत: 138 – 5 = 133 न्यूनतम सत्त्व है ।

स्थिति सत्कर्म

- आयु को छोड़कर शेष कर्मों का स्थिति-सत्त्व अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है।

अनुभाग सत्कर्म

- अप्रशस्त प्रकृतियाँ — द्विस्थानीय सत्त्व
- प्रशस्त प्रकृतियाँ — चतुस्थानीय सत्त्व

प्रदेश सत्त्व

- सर्व प्रकृतियों का अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेश-सत्त्व है ।

www.JainKosh.org

क्षपक के प्रकृति-बंध

ज्ञानावरण — 5

दर्शनावरण — 6 (स्त्यान-3 छोड़कर)

वेदनीय — 1 (साता)

मोहनीय — 9 (संज्वलन-4, भय-2, पुरुषवेद, हास्य-2)

नाम — देवगति संयुत 28 या
देवगति तीर्थंकरयुत 29 या
देवगति आहारकयुत 30 या
देवगति आहारक तीर्थंकरयुत 31

गोत्र — 1 (उच्च)

अंतराय — 5

कुल 55, 56, 57 या 58 प्रकृतियों को बांधता है ।

क्षपक के बंध

स्थिति-बंध

- सत्त्व से संख्यात गुणाहीन अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता है ।

अनुभाग-बंध

- अप्रशस्त प्रकृति – प्रतिसमय अनंतगुणा घटता द्वि-स्थानीय बंध
- प्रशस्त प्रकृति – प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता चतु-स्थानीय बंध

प्रदेश-बंध

- अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेश-बंध होता है ।
- (निद्रा-2, हास्य-2, भय-2, देव-2, वैक्रियिक-2, आहारक-2, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थंकर – इन 18 प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेश-बंध भी होता है ।)

www.JainKosh.org

क्षपक के उदय

प्रकृति उदय

सर्व मूल और उत्तर प्रकृतियाँ उदयावली में प्रवेश करती हैं ।

स्वमुख से उदयवान प्रकृतियाँ

- ज्ञानावरण – 5
- दर्शनावरण – 4 या 5 (निद्रा-2 में से एक सहित)
- वेदनीय – 1 (साता, असाता में से एक)
- मोहनीय – 4, 5, 6
- आयु – 1 मनुष्यायु
- नाम – 30 प्रकृतिक उदयस्थान
- गोत्र – 1 (उच्च)
- अंतराय – 5

कुल

- 51, 52, 53 (निद्रा-2 रहित) या
- 52, 53, 54 (निद्रा-2 सहित)

इस प्रकार प्रत्येक समय में अनंतगुणी विशुद्धि को प्राप्त करके अध:प्रवृत्तकरण का अंतर्मुहूर्त प्रमाण काल समाप्त होता है ।

गुणसेढी गुणसंकम, ठिदिखंडमसत्थगाण रसखंडं ।
विदियकरणादिसमए, अण्णं ठिदिबंधमारभई ॥398॥

- अन्वयार्थ: (विदियकरणादिसमए) द्वितीयकरण अर्थात् अपूर्वकरण के प्रथम समय में (गुणसेढी) गुणश्रेणी (गुणसंकम) गुणसंक्रमण (ठिदिखंडं) स्थितिखण्डन और (असत्थगाण रसखंडं) अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागखंडन होता है।
- वैसे ही (अण्णं ठिदिबंधमारभई) अन्य स्थिति-बंध को प्रारम्भ करता है अर्थात् अधःप्रवृत्तकरण के अंतिम समय में जो स्थिति-बंध होता था उससे पल्य का संख्यातवां भाग कम अन्य स्थिति-बंध करता है ॥398॥

अपूर्वकरण के आवश्यक

ये सब कार्य सत्ता में स्थित कर्मों में होते हैं।

अपूर्वकरण के प्रथम समय से ये आवश्यक प्रारंभ होते हैं –

1. गुणश्रेणी निर्जरा
2. गुणसंक्रमण
3. स्थितिकांडक घात
4. अनुभागकांडक घात

गुणसेढीदीहत्तं, अपुव्वचउक्कादु साहियं होदि ।
गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेओ ॥399॥

- अन्वयार्थ: (गुणसेढीदीहत्तं) यहाँ गुणश्रेणी आयाम का प्रमाण (अपुव्वचउक्कादु साहियं) अपूर्वचतुष्क से अर्थात् अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और क्षीणकषाय – इन चार गुणस्थानों के काल से अधिक (होदि) है।
- (उदयावलिबाहिरदो दु) उदयावली के बाहर (गलिदवसेसे) गलितावशेषरूप गुणश्रेणी आयाम में (अपकर्षित द्रव्य का) (णिक्खेओ) निक्षेपण होता है ॥399॥

www.JainKosh.org

गुणश्रेणी निर्जरा

सत्ता में स्थित कर्मों की

प्रतिसमय

असंख्यात गुणाकार रूप से

निर्जरा होना

गुणश्रेणी निर्जरा कहलाता है ।

गुणश्रेणी निर्जरा, उसके प्रकार, निक्षेप आदि का कथन गाथा 55 में किया है । विशेष स्वरूप आदि जानने के लिए वहाँ से देखें ।

गुणश्रेणि निक्षेप

प्रथम निषेक से दूसरे निषेक में,

दूसरे निषेक से तीसरे निषेक में

इस प्रकार गुणश्रेणि-निर्जरा का जितना आयाम है,

उसके प्रत्येक निषेक में निर्जरा के लिये

उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा

अपकर्षित द्रव्य का देना

गुणश्रेणि निक्षेप कहलाता है ।

गुणश्रेणी निर्जरा

उदाहरण

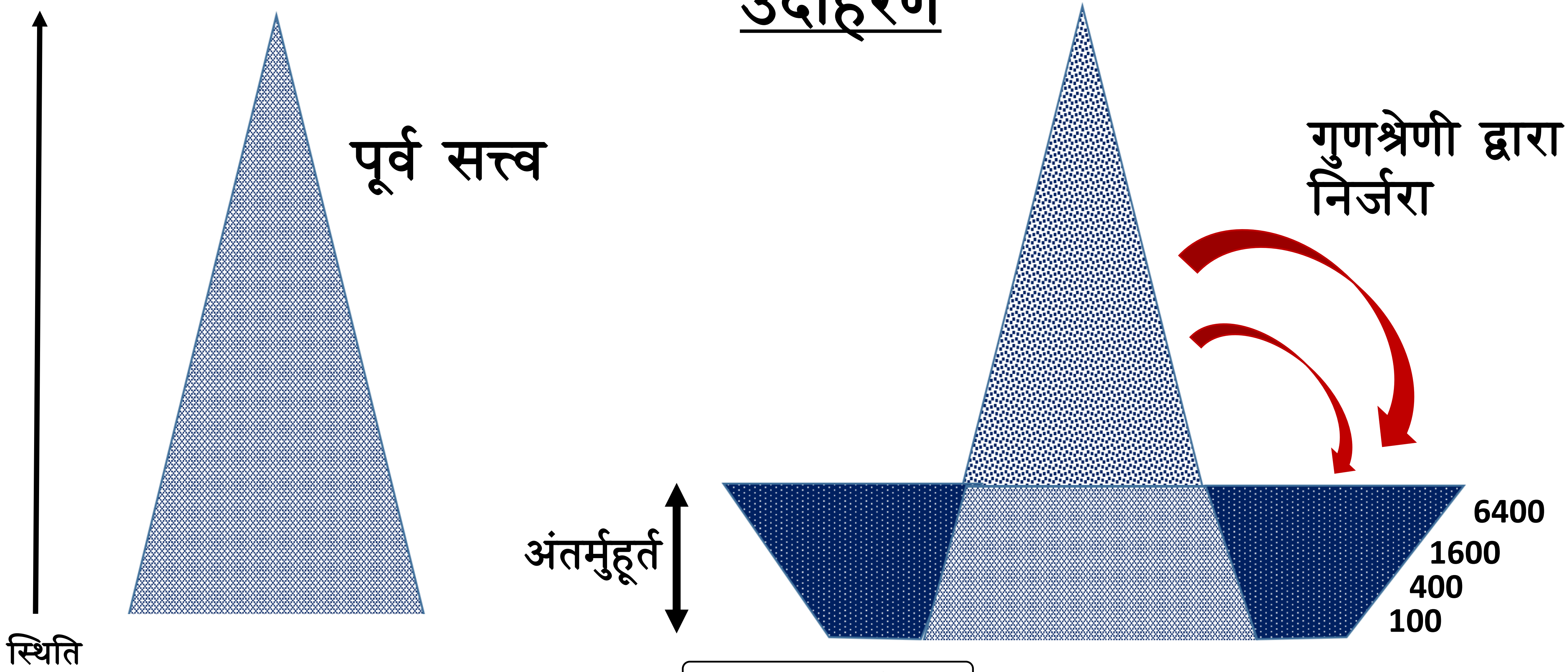

गुणश्रेणी के नियम

1) उदयवाली प्रकृति की ही उदयादि गुणश्रेणी संभव है ।

2) जिस प्रकृति का उदय नहीं है, उसकी 'उदयावली-बाह्य' गुणश्रेणी ही होती है ।

3) उदयवाली प्रकृति की दोनों प्रकार की गुणश्रेणी संभव है ।

4) आयुकर्म की कभी भी गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती है ।

5) शेष सभी पुण्य-पाप रूप प्रकृतियों की गुणश्रेणी निर्जरा होती है ।

6) इससे कर्म का स्थिति-सत्त्व नहीं घटता है ।

गुणश्रेणी का आयाम

यहाँ गुणश्रेणी का आयाम (अपूर्वकरण + अनिवृत्तिकरण + सूक्ष्म-सांपराय + क्षीणकषाय + कुछ अधिक) जितना है।

कुछ अधिक का प्रमाण $\frac{\text{क्षीणकषाय का काल}}{\text{संख्यात}}$ है ।

यहाँ उदयावली-बाह्य गलितावशेष गुणश्रेणि होती है ।

पडिसमयं ओकड्डुदि, असंखगुणिदक्कमेण सिंचदि य । इदि गुणसेढिकरणं, पडिसमयमपुव्वपढमादो ॥400॥

- अन्वयार्थ: (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (असंखगुणिदक्कमेण) असंख्यात गुणितक्रम से (ओकड्डुदि) द्रव्य का अपकर्षण करता है (य) और (सिंचदि) गुणश्रेणी आयाम में निक्षेपण करता है।
- (इदि) इस प्रकार (अपुव्वपढमादो) अपूर्वकरण के प्रथम समय से (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (गुणसेढीकरणं) गुणश्रेणीकरण है ॥400॥

www.JainKosh.org

गुणश्रेणी निर्जरा

इस प्रकार गुणश्रेणी में प्रत्येक समय द्रव्य का निक्षेपण होता है ।

विशुद्धि के बढ़ने से प्रत्येक समय का अपकृष्ट द्रव्य असंख्यात गुणा होता है ।

अपकृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा होने से गुणश्रेणी में निक्षिप्त द्रव्य भी पूर्व की अपेक्षा असंख्यात गुणा हो जाता है ।

यह गुणश्रेणी गलितावशेष होने से प्रत्येक समय में गुणश्रेणी का आयाम कम होता जाता है ।

यह गुणश्रेणी आयु को छोड़कर शेष सर्व कर्मों की होती है ।

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं । बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु ॥401॥

- अन्वयार्थ: अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम समय से (पडिसमयं) प्रत्येक समय में (अप्पसत्थाणं बंधुज्झियपयडीणं) बन्धरहित अप्रशस्त प्रकृतियों का (दव्वं) द्रव्य (बंधंतसजादिपयडीसु) बध्यमान सजातीय प्रकृतियों में (असंखगुणं) असंख्यातगुणित क्रम से (संकमदि) संक्रमित होता है अर्थात् तद्रूप परिणमित होता है ॥401॥

www.JainKosh.org

गुण संक्रमण

जिनका बंध नहीं हो रहा, सत्ता में स्थित ऐसी पाप प्रकृतियों का

प्रतिसमय

असंख्यात गुणा

वर्तमान में बंधने वाली अन्य प्रकृति रूप होना

गुण-संक्रमण कहलाता है ।

गुण संक्रमण

संक्रमण याने एक कर्म का अन्य कर्मरूप होना

किन कर्मों का ?

- अप्रशस्त कर्मों का

बंधने वालों का ?

- नहीं, सत्ता के कर्मों का

कब ?

- प्रतिसमय

कितना ?

- पहले समय से अगले समय असंख्यातगुणा

ओव्वट्टणा जहण्णा, आवलिया ऊणिया तिभागेण ।
एसा ठिदिसु जहण्णा, तहाणुभागेसणंतेसु ॥402॥

- अन्वयार्थ: (जहण्णा ओव्वट्टणा) जघन्य अतिस्थापना (तिभागेण ऊणिया आवलिया) त्रिभाग से कम आवली मात्र है। (एसा) यह (ठिदिसु जहण्णा) स्थितिसंबंधी जघन्य अतिस्थापना है।
- (तहा) उसी प्रकार (अणुभागेसु) अनुभागसंबंधी जघन्य अतिस्थापना (अणंतेसु) अनन्त स्पर्धकरूप है ॥402॥

जघन्य अतिस्थापना और निक्षेप

	स्थिति संबंधी	अनुभाग संबंधी
जघन्य अतिस्थापना	$\frac{\text{आवली}-1}{3} \times 2$	अनंत स्पर्धक
जघन्य निक्षेप	$\frac{\text{आवली}-1}{3} + 1$	अनंत स्पर्धक

अतिस्थापना और निक्षेप का स्वरूप, प्रमाण आदि गाथा 56 आदि में विस्तार से कहा है। विशेष वहाँ से देखें।

संकामेदुक्कड्डुदि, जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति ।
आवलियं से काले, तेण परं होंति भजियव्वा ॥403॥

- अन्वयार्थ: (जे अंसे) जो परमाणु (संकामेदुक्कड्डुदि) संक्रमित और उत्कर्षित किए जाते हैं (ते) वे (से काले) उसके अनन्तर काल में (आवलियं) एक आवली पर्यन्त (अवट्ठिदा) अवस्थित (होंति) रहते हैं।
- (तेण परं) उसके पश्चात् (भजियव्वा होंति) भजनीय हैं अर्थात् अवस्थित रहते हैं अथवा उनकी स्थिति आदि में हानि-वृद्धि भी हो सकती है ॥403॥

संक्रमण, उत्कर्षण के नियम

जिन कर्म परमाणुओं का संक्रमण किया जाता है, वे एक आवली काल तक तदवस्थ रहते हैं । उनका अपकर्षण, उत्कर्षण, उदीरणा, संक्रमण नहीं हो सकता है ।

जिन कर्म परमाणुओं का उत्कर्षण किया जाता है, वे भी एक आवली काल तक तदवस्थ रहते हैं । उनका अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण, उदीरणा, उदय नहीं हो सकता है ।

एक आवली काल पश्चात् वे कर्म परमाणु अपकर्षण आदि के योग्य हो जाते हैं ।

यह नियम स्थिति एवं अनुभाग दोनों के संक्रमण और उत्कर्षण के लिए जानना ।

ओक्कड्डुदि जे अंसे, से काले ते च होंति भजिदव्वा ।
वड्ढीए अवट्ठाणे, हाणीए संकमे उदए ॥404॥

- अन्वयार्थ: (जे अंसे) जो कर्म परमाणु (ओक्कड्डुदि) स्थिति और अनुभाग द्वारा अपकर्षित किए जाते हैं (ते) वे (से काले) उसके अनंतर समय में (वड्ढीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए) वृद्धि, अवस्थान, हानि, संक्रमण और उदय के लिए (भजिदव्वा होंति) भजनीय हैं ॥404॥

अपकर्षण के नियम

जिन कर्म परमाणुओं का अपकर्षण किया जाता है, उनका अनंतर समय में पुनः अपकर्षण या उत्कर्षण, संक्रमण, उदय अथवा उदीरणा हो सकती है अथवा वे तदवस्थ भी रह सकते हैं ।

उत्कर्षण और संक्रमण की भांति अपकर्षण के बाद एक आवली काल तक वे अचल नहीं रहते ।

एक्कं च ठिदिविसेसं, तु असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु ।
वड्ढेदि हरस्सेदि च, तहाणुभागेसणंतेसु ॥405॥

- अन्वयार्थ: (एक्कं च ठिदिविसेसं) एक स्थिति-विशेष को (असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु) असंख्यात स्थिति-विशेषों में (वड्ढेदि हरस्सेदि च) बढ़ाता अथवा घटाता है।
- (तहा) उसी प्रकार एक स्पर्धक की वर्गणा को (अणुभागेसणंतेसु) अनुभाग-विषयक अनन्त स्पर्धकों में बढ़ाता और घटाता है ॥405॥

अपकर्षण अथवा उत्कर्षण होने पर एक स्थिति-विशेष के कर्म परमाणुओं को असंख्यात स्थितियों में निक्षिप्त किया जाता है । क्योंकि अपकर्षण की अपेक्षा जघन्य निक्षेप $(\frac{\text{आवली}-1}{3} + 1)$ भाग प्रमाण है, जो कि असंख्यात समय है ।

व्याघात विषयक उत्कर्षण की अपेक्षा जघन्य निक्षेप आवली/असंख्यात है । यह भी असंख्यात समय है ।

इसी प्रकार अनुभाग का अपकर्षण अथवा उत्कर्षण होने पर एक वर्गणा विशेष के कर्म-परमाणुओं को अनंत स्पर्धकों में निक्षिप्त किया जाता है । क्योंकि अनुभाग संबंधी जघन्य निक्षेप भी अनंत स्पर्धक प्रमाण है ।

अनुभाग अपकर्षण और अनुभाग कांडकघात में अंतर

अनुभाग कांडकघात	अनुभाग अपकर्षण
1) अनुभागकांडकघात में सत्ता में स्थित उत्कृष्ट अनुभाग वाले सभी स्पर्धकों का एक ही साथ अनुभाग हीन होता है ।	अपकर्षण में उत्कृष्ट अनुभाग में स्थित कुछ कर्म परमाणुओं का ही अनुभाग घटता है । सत्त्व पूर्ववत् बना रहता है ।
2) अनुभागकांडक घात एक अंतर्मुहूर्त में होता है।	यह एक समय में ही पूर्ण हो जाता है ।
3) यह अप्रशस्त प्रकृतियों का ही होता है ।	यह सभी कर्म प्रकृतियों का होता है ।
4) यह अपूर्वकरण आदि विशुद्ध परिणामों से होता है ।	यह यथायोग्य परिणामों से सभी संसारी जीवों को होता है ।
5) इससे अनंत बहुभाग प्रमाण अनुभाग-सत्त्व का नाश हो जाता है ।	इससे अनुभाग-सत्त्व नहीं घाता जाता ।

पल्लस्स संखभागं, वरं पि अवरादु संखगुणिदं तु ।
पढमे अपुव्वखवगे, ठिदिखंडपमाणयं होदि ॥406॥

- अन्वयार्थ: (अपुव्वखवगे) क्षपक अपूर्वकरण में (पढमे ठिदिखंडपमाणयं) प्रथम (जघन्य और उत्कृष्ट) स्थितिकांडक का प्रमाण (पल्लस्स संखभागं) पल्य का संख्यातवां भाग है,
- (तु) परन्तु (अवरादु) जघन्य से (वरं पि) उत्कृष्ट का प्रमाण (संखगुणिदं) संख्यातगुणित है ॥406॥

अपूर्वकरण में स्थितिकांडक आयाम का प्रमाण

प्रश्न - ऐसा अंतर क्यों होता है ?

जघन्य	पल्य/संख्यात
उत्कृष्ट	पल्य/संख्यात

जघन्य से उत्कृष्ट संख्यात गुणा है ।

- ❖उत्तर – सत्त्व के अनुसार कांडक का आयाम होता है ।
- ❖यदि सत्त्व अधिक है तो कांडक बड़ा होगा ।
- ❖यदि सत्त्व कम है, तो कांडक छोटा होगा ।
- ❖इसलिए ऐसा अंतर हो जाता है ।

www.JainKosh.org

प्रश्न – सत्त्व भी भिन्न कैसे होता है ?

उत्तर-कोई जीव क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करके सीधे क्षपक श्रेणी पर आरोहण करता है, उसके स्थिति-सत्त्व अधिक होता है । क्योंकि उसके अन्य कांडकघात नहीं हुए हैं ।

कोई अन्य जीव क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करके दो बार उपशम श्रेणी चढ़ता है, फिर वह क्षपक श्रेणी पर आरोहण करता है । उसके सत्त्व कम होता है, क्योंकि उपशम श्रेणी में हजारों कांडकघात के द्वारा सत्त्व घटाया गया है । इस कारण सत्त्व में इतनी भिन्नता आ जाती है ।

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसंतो । ठिदिबंधो य अपुव्वे, होदि हु संखेज्जगुणहीणो ॥407॥

- अन्वयार्थ: (आउगवज्जाणं) आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का (ठिदिघादो) स्थितिघात होता है।
- (अपुव्वे) अपूर्वकरण में (पढमादु चरिमठिदिसंतो) प्रथम समय के स्थिति-सत्त्व और स्थिति-बंध की अपेक्षा चरम समय का स्थिति-सत्त्व और (ठिदिबंधो) स्थिति-बंध (संखेज्जगुणहीणो) संख्यातगुणित कम (होदि हु) होता है ॥407॥

www.JainKosh.org

अपूर्वकरण के प्रारंभ एवं अंत में स्थितिघात, स्थिति-सत्त्व, स्थिति-बंध

	प्रारंभ में	अंत में
कांडक आयाम (स्थितिघात)	$\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$	$\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात} \times \text{संख्यात}}$
स्थिति-सत्त्व	अंत:कोड़ाकोड़ी सागर	$\frac{\text{अंत:कोड़ाकोड़ी सागर}}{\text{संख्यात}}$
स्थिति-बंध	$\frac{\text{अंत:कोड़ाकोड़ी सागर}}{\text{संख्यात}}$	$\frac{\text{अंत:कोड़ाकोड़ी सागर}}{\text{संख्यात} \times \text{संख्यात}}$

नोट – यह सब आयु को छोड़कर शेष 7 कर्मों में होता है ।

स्थिति-बंधापसरण के कारण स्थिति-बंध घटता हुआ संख्यात गुणा हीन हो गया है ।

स्थितिकांडकघात के कारण स्थिति-सत्त्व घटता हुआ संख्यात गुणा हीन हो गया है ।

चूंकि स्थिति-सत्त्व घट रहा है, अत: स्थितिकांडक का आयाम भी संख्यात गुणा हीन हो गया है ।

प्रश्न – अपूर्वकरण में प्रत्येक समय में अनंतगुणी विशुद्धि बढ़ रही है। फिर स्थितिकांडक का आयाम बढ़ने के स्थान पर घट क्यों रहा है?

उत्तर – यद्यपि विशुद्धि बढ़ रही है, तथापि स्थिति-कांडक का आयाम सत्त्व के अनुसार बनता है ।

यदि स्थिति-सत्त्व हीन है, तो कांडक का आयाम भी कम होगा ।

यदि स्थिति-सत्त्व अधिक है, तो कांडक का आयाम भी अधिक होगा ।

चूंकि स्थिति-सत्त्व संख्यात गुणा हीन हो गया है, अतः स्थितिकांडक का आयाम भी संख्यात गुणा हीन हो गया है ।

अपूर्वकरण में कितने अंतर्मुहूर्त हो जाते हैं?

मानाकि किसी जीव का स्थिति-सत्त्व उत्कृष्ट अंत:कोड़ाकोड़ी सागर है । यह अपूर्वकरण के अंत में संख्यात गुणा हीन होकर रह गया ।

यहाँ सबसे छोटा भी संख्यात मानें, तो 2 होता है । अर्थात् सत्त्व 1 कोड़ाकोड़ी से

$\frac{\text{1 कोड़ाकोड़ी सागर}}{2}$ रह गया ।

याने 50 लाख करोड़ सागर सत्त्व घाता गया । और लगभग इतना ही शेष रह गया ।

यदि स्थितिकांडकघात द्वारा 1 सागर घाता जाता है तो 1 सागर घातने में 1 अंतर्मुहूर्त लगा ।

तो 50 लाख करोड़ सागर घातने में 50 लाख करोड़ अंतर्मुहूर्त लगे !! ये सब भी अपूर्वकरण के एक अंतर्मुहूर्त में हो जाते हैं क्योंकि अंतर्मुहूर्त के असंख्यातों प्रकार हैं ।

अंतोकोडाकोडी, अपुव्वपढमम्हि होदि ठिदिबंधो ।
बंधादो पुण सत्तं, संखेज्जगुणं हवे तत्थ ॥408॥

- अन्वयार्थ: (अपुव्वपढमम्हि) अपूर्वकरण के प्रथम समय में (ठिदिबंधो) स्थिति-बंध (अंतोकोडाकोडी) अन्त:कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण (होदि) है अर्थात् पृथक्त्वलक्षकोटी सागरोपम प्रमाण है।
- (पुण तत्थ) पुनः वहाँ (सत्तं) स्थिति-सत्त्व (बंधादो) स्थिति-बंध की अपेक्षा (संखेज्जगुणं) संख्यातगुणा (हवे) है ॥408॥

अपूर्वकरण के प्रारंभ में स्थिति-बंध, सत्त्व

	स्थिति-बंध	स्थिति-सत्त्व
प्रमाण	अंत:कोटाकोटी सागर	अंत:कोटाकोटी सागर
संदृष्टि	सा अं को २ ४	सा अं को २

यहाँ बंध से सत्त्व संख्यात गुणा है ।

एक्केक्कट्ठिदिखंडय-णिवडणठिदिओसरण काले ।
संखेज्जसहस्साणि य, णिवडंति रसस्स खंडाणि ॥409॥

- अन्वयार्थ: (एक्केक्कट्ठिदिखंडय-णिवडणठिदिओसरण काले) एक-एक स्थितिकांडक के पतनकाल में अथवा एक-एक स्थितिबंधापसरण काल में (संखेज्जसहस्साणि य) संख्यात हजार (रसस्स खंडाणि) अनुभागकांडकों का (णिवडंति) पतन होता है ॥409॥

अनुभाग कांडक घात

सत्ता में स्थित

पाप प्रकृतियों का अनुभाग

हर अंतर्मुहूर्त में

अनंत बहुभाग नष्ट करना

अनुभागकांडक घात कहलाता है ।

www.JainKosh.org

अनुभागकांडक घात कैसे होता है?

जितने अनुभाग का नाश करना है, अग्र भाग के उतने अनुभाग के स्पर्धकों को हीन अनुभाग के स्पर्धकों में दिया जाता है ।

एक अंतर्मुहूर्त में सारे स्पर्धकों को हीन अनुभाग में देने पर अधिक शक्ति वाले स्पर्धक समाप्त हो जाते हैं ।

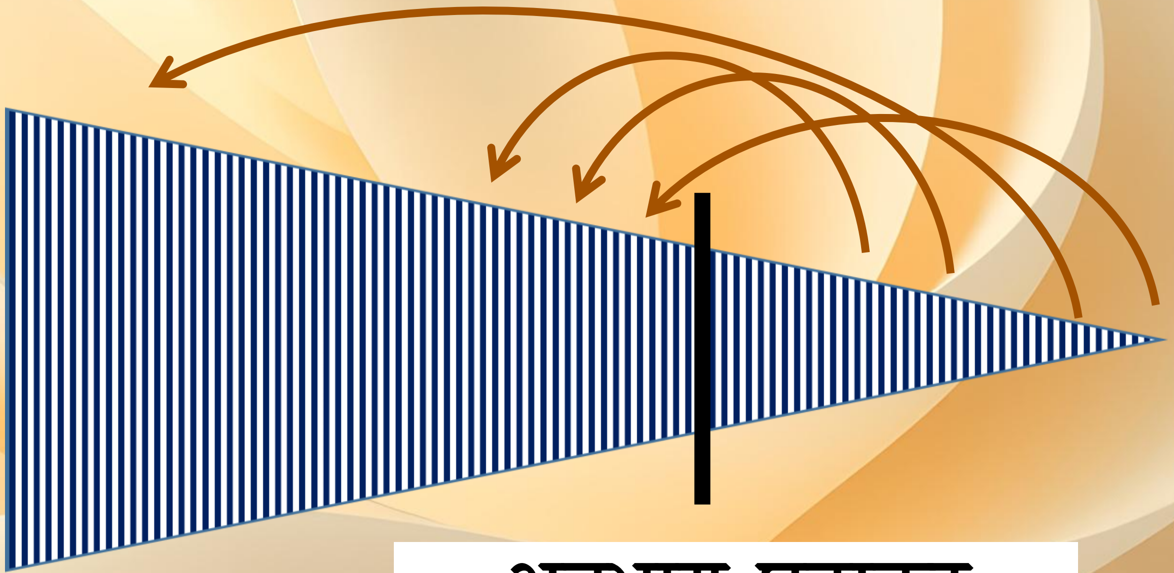

अनुभाग घटाकर अधिक शक्ति वाले स्पर्धकों को हीन शक्ति वाले स्पर्धकों में लाना

अनुभागकाण्डक घात - विशेष

स्थितिकांडकघात का और स्थिति-बंधापसरण का काल समान अंतर्मुहूर्त है ।

उस एक अंतर्मुहूर्त में हजारों अनुभागकांडकघात हो जाते हैं ।

एक अनुभाग खण्डन में अंतर्मुहूर्त काल लगता है । तथापि स्थितिकांडकघात में लगने वाले अंतर्मुहूर्त का संख्यातवाँ भाग ही लगता है ।

असुहाणं पयडीणं, अणंतभागा रसस्स खंडाणि ।
सुहपयडीणं णियमा, णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि ॥410॥

- अन्वयार्थ: (असुहाणं पयडीणं) अशुभ प्रकृतियों का (रसस्स खंडाणि) अनुभागकांडक का प्रमाण (अणंतभागा) अनन्त बहुभाग मात्र है।
- (सुहपयडीणं) शुभ प्रकृतियों के (रसस्स खंडाणि) अनुभागकांडक (णियमा) नियम से (णत्थी त्ति) नहीं होते हैं ॥410॥

अनुभाग-काण्डक-घात

अनुभागकांडक के द्वारा असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियों का ही अनुभाग सत्त्व नष्ट होता है ।

विशुद्ध परिणामों के द्वारा साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग नहीं घाता जाता है ।

अनुभाग घात अनंत बहुभाग का होता है । अर्थात् कुल अनुभाग-सत्त्व में अनंत का भाग लगाने पर प्राप्त एक भाग शेष रखा जाता है । बाकी बहुभाग प्रमाण अनुभाग का घात किया जाता है ।

www.JainKosh.org

अनुभाग-काण्डक-घात

एक अनुभागकांडक के बाद अगले अनुभागकांडक के द्वारा शेष अनंतवें अनुभाग का पुनः घात किया जाता है । शेष अनुभाग में अनंत का भाग लगाकर उपलब्ध अनंतवाँ भाग रखा जाता है, शेष बहुभाग को नष्ट किया जाता है ।

इसी प्रकार प्रत्येक अनुभागकांडक में बहुभाग को घाता जाता है एवं एक अनंतवाँ भाग शेष रखा जाता है ।

ऐसे अनुभागकांडकघात एक स्थितिकांडक के दौरान ही हजारों हो जाते हैं । ऐसे हजारों स्थितिकांडकों में हजारों-हजार अनुभागघात होते हैं ।

www.JainKosh.org

पढमे छट्ठे चरिमे, भागे दुग तीस चदुर वोच्छिण्णा ।
बंधेण अपुव्वस्स य, से काले बादरो होदि ॥411॥

- अन्वयार्थ: (अपुव्वस्स) अपूर्वकरण के (पढमे भागे) प्रथम भाग में (दुग) दो प्रकृतियाँ, (छट्ठे भागे) छठे भाग में (तीस) तीस प्रकृतियाँ और (चरिमे भागे) अंतिम भाग में (चदुर) चार प्रकृतियाँ (बंधेण) बंध की अपेक्षा से (वोच्छिण्णा) व्युच्छिन्न होती हैं ।
- (य) और (से काले) अनन्तर समय में जीव (बादरो) बादर-साम्पराय होता है ॥411॥

www.JainKosh.org

अपूर्वकरण गुणस्थान में बंध, उदय-व्युच्छित्ति

किस भाग का अंतिम समय	संख्या	बंध-व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
प्रथम भाग	2	निद्रा-प्रचला
छठा भाग	30	तीर्थंकर आदि 30
सातवां भाग	4	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा
– इन छः प्रकृतियों की उदय-व्युच्छित्ति अंतिम समय में होती है ।

इस प्रकार अपूर्वकरण समाप्त होता है ।

- Reference : श्री लब्धिसार टीकासहित अनुवाद – ब्र. सुजाता रोटे, बाहुबली (वर्तमान में आर्यिका श्री शुद्धोहंश्री माताजी)
- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889
- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं लब्धिसार की प्लेलिस्ट चुनें ।